

भावार्थ है, जरा सूक्ष्म बात है थोड़ी। **यह मोहकर्म....** एक जड़ मोहकर्म है। आत्मा के क्षेत्र में; जहाँ आत्मा है, वहाँ एक क्षेत्रावगाही मोहकर्म जड़ है। वह **जड़ पुद्गलद्रव्य है;**... वह मोहकर्म, आत्मा है, वहाँ एक क्षेत्र में रहनेवाला मोहकर्म जड़ है। **उसका उदय कलुष (मलिन) भावरूप है;**.... अर्थात् मोहकर्म का उदय है, वह तो जड़ की पर्याय भले, परन्तु आत्मा में उसका दिखाव होता है - उपयोग में, वह मलिन परिणाम है। आहा! चाहे तो शुभ-अशुभभाव हो, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव हो या दया, दान का भाव हो परन्तु वह भाव, मोहकर्म के फलरूप मलिनभाव है - ऐसी बात है। आहा!

है ? वह मलिनभाव है। **वह भाव भी, मोहकर्म का भाव होने से,....** जड़ कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में यह शुभ-अशुभभाव जो मलिनभाव, वह जड़ कर्म का भाव होने से वह जड़ का है; आत्मा का नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम। विकार, वह भावक का

भाव है। जड़कर्म है, वह भावक — भाव करनेवाला और शुभ-अशुभभाव, वह भाव, मलिनभाव, यह भावक का भाव है, कर्म का भाव है, जड़ का भाव है; चैतन का स्वभाव नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है, बापू!

यह मोहकर्म का भाव, पुद्गल का ही विकार है, यह भावकभाव जब चैतन्य के उपयोग के अनुभव में आता है,.... चैतन्य जो शक्ति है, वह तो ध्रुव त्रिकाल है परन्तु उसकी व्यक्ति जो प्रगट ज्ञान; जैसे कर्म के निमित्त का व्यक्तपना मलिनता है, वैसे भगवान चैतन्यशक्ति का प्रगटपना जानन-देखन पर्याय है। सूक्ष्म विषय है, भाई! जैसे, इस जड़कर्म का फल मलिन भाव है, वह जड़ का व्यक्तभाव है; वैसे भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप की व्यक्ति (अर्थात्) जानने-देखने की मति-श्रुत की पर्याय व्यक्त पर्याय है, उसके उपयोग के अनुभव में आता है, जब यहाँ चैतन्य के उपयोग में अनुभव में आता है। आहाहा! अर्थात्? जानन-देखन जो शक्ति की व्यक्ति / प्रगटदशा, उसके उपयोग में जब मलिनभाव आता है, आहाहा! ऐसा सूक्ष्म तत्त्व है।

साधारण लोगों को तो पता ही नहीं पड़ता! भक्ति करो, और व्रत करो, पूजा करो, हो जायेगा धर्म! वहाँ धूल में भी नहीं है... आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करो, बस! वह तो राग है। राग तो कर्म के निमित्त का-भावक का भाव है; वह तेरा भाव नहीं है। आहाहा!

श्रोता : राग तो जीव की पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय है परन्तु वह द्रव्य का स्वभाव नहीं... द्रव्य का-चैतन्य का वह स्वभाव नहीं। चैतन्य शक्ति का व्यक्तपना तो जानना-देखना, वह उसका व्यक्तपना है। उसका व्यक्तपना, राग का व्यक्तपना हो - ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा!

श्रोता : स्वरूप न हो तो होवे कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है, वह कहा न? वह पर्याय में होता है, वह पर के कारण होता है, पर का लक्ष्य लेता है, जानने-देखने के उपयोग में, वह विकार-कर्म का, भावक का भाव परन्तु उपयोग वहाँ है; इसलिए वहाँ मलिन उपयोग दिखता है।

श्रोता : दिखता है या होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखता है, वास्तव में वस्तु कहाँ होती है ?

श्रोता : द्रव्य तो नहीं होता ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में दिखता है परन्तु पर्याय में दिखता है, वह जड़ का भाव दिखता है, वह चैतन्यस्वभाव का भाव नहीं । सूक्ष्म बात है बापू !

श्रोता : दिखता है और उसका भाव नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; उसका नहीं । जैसे चैतन्य जाननस्वभाव-देखनस्वभाव का व्यक्तपना तो जानने-देखने का उसका व्यक्तपना है । उसका व्यक्तपना, विकार का व्यक्तपना (नहीं होता) । सूक्ष्म बात, भाई ! सूक्ष्म मार्ग, बापू ! आहा !

वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म बात है । आहाहा ! यहाँ दो प्रकार कहे हैं । कहते हैं देखो ! **उपयोग भी विकारी होकर रागादिरूप मलिन दिखायी देता है ।** देखा ? भगवान आत्मा !... भाई ! यह तो जैनधर्म, यह वस्तु का स्वभाव (है) । आहाहा ! इसे समझने के लिए तो अनन्त पुरुषार्थ चाहिए । आहाहा ! यह कोई साधारण रीति से मिल जाये ? आहाहा ! यह क्या कहते हैं ? **चैतन्य के उपयोग के अनुभव में आता है, तब उपयोग भी विकारी होकर....** देखा ? पर्याय विकारी होकर, **रागादिरूप मलिन दिखायी देता है ।** पर्याय में मलिनता है - ऐसा दिखायी देता है । वास्तव में इस चैतन्यशक्ति की व्यक्तता का वह भाव नहीं है । कर्म के उदय की व्यक्तता का वह भाव मलिन है । आहाहा ! ऐसी बात कहाँ ? फुर्सत कहाँ लोगों को ! कौन है और क्या है ?

एक ओर भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, ज्ञान और दर्शन के स्वभाव से भरपूर भण्डार, उसकी व्यक्तता,... वह कहते हैं देखो ! इस चैतन्य की शक्ति की व्यक्ति (प्रगटता) विकारी दिखती है । **जब उसका भेदज्ञान हो...** देखा ? क्या भेदज्ञान हो अर्थात् ? चैतन्य, वह ज्ञान-दर्शन स्वभाववन्त परिपूर्ण प्रभु, उसकी व्यक्तता तो जानना-देखना, ऐसी उसकी व्यक्तता-प्रगटता हो, तब यह पर्याय में कर्म के निमित्त के संग से जो मलिनता हो-भाव, वह भावक का भाव है, वह चैतन्य के स्वभाव का भाव नहीं है । आहा ! अब ऐसा कहाँ समझना ? ऐसा है प्रभु !

श्रोता : अपूर्व है !

पूज्य गुरुदेवश्री : अपूर्व है, भाई! आहा! इसने कभी किया नहीं। आहाहा! अनन्त काल... अनन्त काल.. व्यतीत हो गया, भाई! आहा! परन्तु एक ओर भगवान, आहाहा! कलश में कहेंगे 'शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है।' आत्मा तो शुद्ध चैतन्य ज्ञान-सिन्धु सागर भरा है, आहाहा! उसकी व्यक्तता — वह कहते हैं, देखो! 'चैतन्य की शक्ति की व्यक्ति'.... चैतन्य ज्ञान और दर्शन और ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव से भरपूर भगवान, उस चैतन्य की शक्ति, उसकी व्यक्ति, उसकी विशेष प्रगट दशा तो ज्ञानदर्शनोपयोगमात्र है.... धीरे से समझना, भाई! यह तो अनन्त काल में नहीं की हुई बात है। यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कथित मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! यह बहुत धीरज से समझ में आये ऐसी चीज है। आहाहा! क्या कहा?

श्रोता : समझ में आ जाये ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, समझ में आये ऐसी ही चीज है। बराबर! यहाँ दो प्रकार वर्णन किये। एक ओर भगवान चैतन्यस्वरूप परमात्मस्वरूप विराजमान है। चैतन्यशक्ति कहो, परमात्मस्वरूप कहो, ज्ञान और दर्शन के स्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा की व्यक्ति अर्थात् प्रगटता, पर्याय में जानने-देखने के उपयोग की पर्याय, वह उसकी व्यक्तता है और कर्म जो है, जड़-भावक, उसकी व्यक्तता अर्थात् पुण्य-पाप का मलिनभाव। आहाहा! गजब बातें हैं, भाई! यह कर्म के भावक का भाव! इस चैतन्य की शक्ति का जानना-देखना उपयोग, वह उसका भाव, परन्तु अनादि से... आहाहा! इस जानन-देखन उपयोग में यह मलिनता, मन का भाव अन्दर जो उपयोगरूप दिखता है, वह उसका नहीं है। आहाहा!

श्रोता : होता है उसकी पर्याय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में होता है, तथापि वह उसके स्वभाव में से हुआ नहीं है, उसकी शक्ति के सत्व में से हुआ (भाव) नहीं है, ऐसा है भगवान! सूक्ष्म बातें बहुत, बापू! मार्ग ऐसा सूक्ष्म! आहाहा! गाथा ऐसी आ गयी न, आहाहा!

श्रोता : भाग्यशाली को तो सुनने को मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले, ऐसा। बात तो ऐसी है, बापू! आहाहा! क्या कहें? ओहो! भगवान आत्मा तो चैतन्यस्वभावी, ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वभावी प्रभु, उसकी व्यक्तता

– प्रगटता तो जानने-देखने उपयोग और आनन्द पर्याय, वह उसकी प्रगटता होती है। आहाहा! उसके बदले कर्म जो भावक-जड़कर्म, उसका व्यक्तपना जो पुण्य-पाप और मलिन भावक का भाव, वह (आत्म) द्रव्यस्वभाव का भाव नहीं है। आहाहा! पाटनीजी! समझ में आवे ऐसा तो है, बापू! प्रभु! यह तेरे घर की बात है न, नाथ! आहाहा! यह जानक स्वभाव भगवान का प्रगटपना तो जानने-देखने का उपयोग है। उसमें यह कर्म के भावक का भाव, उपयोग वहाँ जुड़ने से मलिन दिखता है। आहाहाहा!

ऐसा उपदेश अब यह कहाँ! ऐसा कहते हैं कि भगवान की भक्ति करो, गुरु की भक्ति करो, तब तो समझ में आये, अब भक्ति-भक्ति करे, वह सब तो राग है। सुन न अब!

श्रोता : कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, वह सब राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग है, वह कर्म के भावक का भाव है, भाई! तुझे पता नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम, बापू! आहा! गाथा बहुत सरस! चैतन्य की शक्ति की व्यक्ति... भगवान सामर्थ्य तो उसका – आत्मा का चैतन्य सामर्थ्य ज्ञान-दर्शन सामर्थ्य है। उसकी व्यक्ति-प्रगटता ज्ञान-दर्शन-उपयोगमात्र है। उसकी प्रगटता तो जानना-देखना उपयोगमात्र उसकी प्रगटता है। आहाहा! उसके उपयोग की प्रगटता में रागरूप उपयोग हो, ऐसा उसका उपयोग ही नहीं है। आहाहा! यह चैतन्यस्वरूप भगवान ज्ञान का सागर प्रज्ञाब्रह्म प्रभु की प्रगटता को जानने-देखने के उपयोग की प्रगटता है; उसकी प्रगटता शुभ-अशुभभाव, वह उसकी प्रगटता नहीं है। आहाहा! क्योंकि उसकी (आत्मा की) खान में वह विकार भरा नहीं है कि जिसका विकारपना भावक-भाव्य हो — वह भावक जीव का भाव हो। आहाहा! कठिन बात बापू! अरे! धर्म क्या चीज है!

यह कलुषता राग-द्वेष-मोहरूप है.... है ? आहाहा! भगवान चैतन्य शक्ति अर्थात् जानने-देखने की सामर्थ्यवाला वह तत्त्व है। भगवान आत्मा तो जानने-देखने के स्वभाव की सामर्थ्यवाला वह तत्त्व है। उसके सामर्थ्य में से प्रगट हो तो जानने-देखने की व्यक्त पर्याय-उपयोग प्रगट हो; उसमें से मलिन पर्याय उपयोग में प्रगट हो – ऐसा है नहीं। आहाहा! परन्तु उस उपयोग में कर्म के निमित्त से हुआ भावक का भाव — पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति आदि का भाव... आहाहा! वह उसके उपयोग में मलिनरूप दिखाई

देता है। उसकी वस्तु पर्याय और गुण कोई मलिन नहीं। पुण्य-पाप के मलिनभाव पर्याय में इसे दिखाई देते हैं, आहाहा! वह पर का भाव है, पर के संग से हुआ है। पर की शक्ति की व्यक्तता प्रगट होने से वह मलिनभाव हुआ है। भगवान की (आत्मा की) शक्ति से प्रगट होने पर वह मलिनभाव हुआ नहीं, उसकी प्रगटता में तो जानने-देखने की पर्याय, वह उसकी प्रगटता है। आहाहा! उस जानने-देखने की प्रगट पर्याय उपयोग में कर्म के भावक का भाव मलिनरूप दिखाई देता है। आहाहा! है? वह द्रव्यकर्म का जड़-पुद्गल द्रव्य का भाव है। कलुषितता कहा है न? **वह द्रव्यकर्मरूप जड़ पुद्गलद्रव्य की है,...** आहाहा! ऐसा है। क्योंकि जो शुभ-अशुभभाव है, वह अचेतन है-जड़ है, उसमें चैतन्य के प्रकाश की कोई पर्याय (किरण) उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। सम्प्रदाय में पड़े हुए को यह बात कठिन लगती है। मार्ग ऐसा सूक्ष्म है।

बापू! मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! कहते हैं कि **यह कलुषता राग-द्वेष-मोह...** पुण्य-पाप और मिथ्यात्वरूपी भाव **वह द्रव्यकर्मरूप जड़ पुद्गलद्रव्य की है,...** आहाहा! इतना धीरजवान हो, तब उसके उपयोग में मलिनता है - ऐसा दिखे। आहाहा! वह मलिनता मेरी चीज नहीं। आहाहा! भगवान की भक्ति करे, देव-गुरु की भक्ति करे, वह सब रागभाव (है)। आहाहा! गजब बात है! वह भावकर्म का भाव है। जीवशक्ति का वह भाव नहीं। उसके स्वभाव में वह भरा नहीं; स्वभाव में तो जानना-देखना और आनन्द भरा है। उसकी प्रगट दशा हो तो जानना-देखना और आनन्ददशा हो। आहाहा! ऐसा है! तो भी फिर लोग बेचारे कितने ही... एक भव्यसागर है, (उन्होंने) बहुत प्रसन्नता बतायी। आहाहा! बहिनश्री के वचनामृत हमें... दिगम्बर साधु है, बीस वर्ष की दीक्षा... आहाहा! हमने कभी ऐसी बात सुनी नहीं। हमें पता नहीं ऐसा। हम मुनि नहीं, बापू! मुनि किसे कहते हैं? आहाहा!

कल दो पत्र आये थे, इससे पहले आये थे। आहाहा! लोग ऐसा कि माँग बहुत करते हैं। बहिन की पुस्तक की; स्थानकवासी लोग आते हैं, वे भी माँग करते हैं। परन्तु अपने आप पकड़ना कठिन। आहाहा!

भगवान आत्मा, वह तो चैतन्य अर्थात् जानना-देखना जिसका त्रिकाली स्वभाव,

वह उसकी सामर्थ्य है। उसमें राग करना, ऐसी सामर्थ्य उसमें नहीं है। यह पुण्य-पाप, दया, दान का भाव करना, यह कोई जीव के स्वभाव की सामर्थ्य नहीं है। आहाहा! यह भाव तो जड़कर्म-भावक जो जड़ है... यह कर्म सिद्ध किया। एक ओर भगवान सिद्ध किया, दो। भावक का भाव उसकी पर्याय मलिन है, ऐसा भी सिद्ध किया। यह भावक जो ज्ञायकभाव है, उसका भाव जानना-देखना उपयोग, वह सिद्ध किया। आहाहा! अब उस उपयोग में जो वह मलिनता दिखती है, कहते हैं। आहाहा! वह **पुद्गलद्रव्य की है,...** आहाहा! इसमें से निकाले कि यह पर्याय है, वह जड़ के कारण होती है, वह आत्मा की नहीं। किस अपेक्षा? अभी द्रव्यस्वभाव की बात चलती है। जो द्रव्यस्वभाव है - वस्तु का - भगवान आत्मा का, उस स्वभाव में से व्यक्तता (प्रगटता) कोई राग की होगी? उसके स्वभाव के भण्डार में कोई विकार भरा है? उसके स्वभाव के भण्डार में तो निर्विकारी शक्तियाँ भरी हैं। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, शान्तिभाई! ऐसा कलकत्ता में कहीं मिले ऐसा कहीं नहीं है।

श्रोता : कलकत्ता में मिले वह यहाँ नहीं मिलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलकत्ता में पैसे मिलते हैं, कहते हैं। ऐसा जो यहाँ मिलता है। धूल में क्या? यह हमारे रहे अजितभाई, वहाँ नैरोबी में बहुत पैसा मिलता है। आहाहा! यह कहते हैं, पैसा यहाँ नहीं मिलता, वहाँ पैसा मिलता है - ऐसा कहते हैं, भाई! यह पैसा किसे मिलता है? कहाँ मिलता है?

श्रोता : किसी को नहीं मिलता?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे मिले प्रभु! पैसा तो पैसे में रहा। किसे मिले? आहाहा! आत्मा भगवान आत्मा है वहाँ अन्दर पैसा आता है? वहाँ घुस जाता है? पैसा, वह जड़ की दशा जड़ में रहती है। भगवान आत्मा की दशा में भी वह नहीं आता तो उसके द्रव्य-गुण में तो कहाँ से हो? आहाहा!

यहाँ तो पर्याय में आती है, वह चीज क्या है? वह वस्तु तो आती ही नहीं। यहाँ तो पर्याय में शक्ति की व्यक्तता जो उपयोग है, उसके उपयोग में जो जड़कर्म के भावक का भाव मलिनरूप दिखायी देता है, उसका भेदज्ञान करना। आहाहा! भाई! भगवान सर्वज्ञ

जिनेश्वरदेव परमात्मा का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! यह कलुषितता जो राग-द्वेष-मोहरूप है, वह द्रव्यकर्मरूप जड़ पुद्गलद्रव्य की है। यहाँ द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से बात चलती है। द्रव्य का स्वभाव है, वह तो ज्ञान चैतन्यशक्ति... चैतन्यशक्ति, ज्ञानसिन्धु - ज्ञान-दर्शन का सिन्धु, समुद्र, सागर, भगवान (आत्मा) है। उसमें से लहर का उछाला आवे, वह उछाला आवे तो उसमें से क्या आवे? यह जानने-देखने की पर्याय का उछाला आवे। आहाहा! उसमें से उसके उपयोग में जो यह कर्म का भावक का पुण्य-पाप का जो मलिनभाव है, पुद्गल का भाव है, उसके स्वभाव का वह भाव है; जीव के स्वभाव का वह भाव नहीं है। आहाहा! वह पुद्गलद्रव्य का है।

तब भावकभाव जो द्रव्यकर्मरूप मोह का भाव, भावकर्म, उसका भाव शुभ-अशुभराग है, वह द्रव्यकर्मरूप मोह का भाव है। उससे अवश्य भेदभाव होता है, क्योंकि वह पर का है, इसलिए भेदभाव होता है - ऐसा कहा है। वह स्व का नहीं, इसलिए भेदभाव होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग और ऐसा उपदेश! क्या कहते हैं, अभी यह पकड़ना कठिन पड़ता है। आहाहा! अरे! भटकते हुए अनन्त काल गया, इसे सत्य मिला नहीं। सत्य मिले तब इसे (समझने की) दरकार की नहीं। आहाहा! यह भावकभाव जो द्रव्यकर्मरूप जो मोह का भाव, उससे अवश्य भेदभाव होता है, क्योंकि उसके स्वभाव में और उसके स्वभाव की व्यक्तता में यह विकार नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव का सागर है। उसमें व्यक्तता होवे तो उसके स्वभाव की शक्ति की व्यक्तता हो परन्तु पुण्य और पाप के मलिनभाव की व्यक्तता इस (आत्म) शक्ति की व्यक्तता नहीं है, वह द्रव्य के स्वभाव की व्यक्तता नहीं है। आहाहा! वह कर्म के भावक का भाव का भाव है इसलिए है? उससे अवश्य भेदभाव होता है। इस कारण उससे भेदभाव होता है - ऐसा कहते हैं। यह क्या कहा? भगवान आत्मा चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... सिन्धु सागर! यह खारा समुद्र हो, उसकी लहरें खारी होती हैं, मीठा समुद्र हो उसकी लहरें मीठी होती हैं; वैसे भगवान तो आनन्द और ज्ञानसागर का सागर भरा है। उसकी लहरें जो व्यक्तता होवे तो उपयोग-ज्ञान-दर्शन के उपयोग की उसकी व्यक्तता होती है। उस उपयोग में जो कर्म के भावक का भाव दिखता है, वह

जड़कर्म का भाव है, इसलिए उससे पृथक् हो सकता है। आहाहा! ऐसी बात है। ओहो! क्या आचार्यों ने काम किया है! दिगम्बर सन्तों ने! हम तो उनके दास हैं! आहाहा! और यह तो क्या बात की, क्या कहें प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? मैं तो ज्ञान-दर्शन स्वभाव से भरपूर तत्त्व वहाँ मैं हूँ और वहाँ मैं हूँ, ऐसा जिसने माना, उसकी शक्ति में से व्यक्तता तो जानने-देखने और आनन्द की होती है। आहाहा! ऐसे जानने-देखने के भाव में जो मलिनता दिखती है, वह जड़कर्म के भावक का भाव है, वह तेरे स्वभाव का भाव (नहीं)। आहाहा!

श्रोता : वह जड़कर्म की दोस्ती का भाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : दोस्ती स्वयं ने की है, उस ओर के झुकाव में उपयोग में मलिनता होती है, वह चैतन्य का उपयोग नहीं है। आहाहा! वह जड़कर्म के भाव का भास अन्दर होता है, वह मलिनभाव है। जिससे वह जड़कर्म का भावक का भाव ज्ञात हो, वह चैतन्य के स्वभावभाव में से नहीं आया; इसीलिए चैतन्य के स्वभाव की व्यक्तता को लक्ष्य में लेने से अथवा द्रव्य को कायम लक्ष्य में लेने से वह मलिनभाव पृथक् पड़ जाता है - ऐसा है। आहा!

सम्प्रदाय में यह चलता है कि यह सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो, यह करो और वह करो। भक्तिवाले को यह आवे कि भक्ति करो देव-गुरु की। बापू! मार्ग अलग है, भाई! आहाहा!

श्रोता : सब परसन्मुखता के भाव है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव परसन्मुखता का भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है, वह परसन्मुख है, वह वास्तव में भावक का भाव है; इस चैतन्यद्रव्य के स्वभाव का वह भाव नहीं है। आहाहा! भगवान सिन्धु चैतन्य, चैतन्य सिन्धु-यह आयेगा इस कलश में। आहाहा! चैतन्य का सिन्धु का ज्वार पर्याय में आवे, तब तो ज्ञान-दर्शन और आनन्द का आवे, भाई! आहाहा! और भावककर्म है, उसका भाव तो मलिनभाव, वह उसका ज्वार है परन्तु यहाँ ज्ञान के उपयोग में ज्ञात होने पर, लक्ष्य वहाँ है, इसलिए मलिनता दिखाई देती है। आहाहा! परन्तु लक्ष्य को बदल डाल! भगवान

ज्ञानसिन्धु है, उस पर लक्ष्य कर तो इस राग की भिन्नता का तुझे अन्दर भास होगा। आहाहा! कहो, ऐसा है।

श्रोता : आपने बहुत माल निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी वस्तु है। आहाहा!

इसे पहले समझ में तो बात को ले, पहले ज्ञान में इसका निर्णय तो करे कि मेरा प्रभु शुद्ध चैतन्यशक्ति के स्वभाव से भरपूर भगवान में मलिनता के परिणाम कहाँ से आये? आहाहा! आहाहा! शक्कर के परिणाम पतले पड़ें परन्तु कहीं रागरूप हो? चिरायतेरूप हो? वह शक्कर का पानी पतला पड़े तो भी मीठा रहता है। है? आहाहा! वैसे भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप-ज्ञान-देखन-आनन्द आदि शक्ति की सामर्थ्यवाला प्रभु है, उसकी पर्याय में लहर आवे तो निर्मल ज्ञान-दर्शन आनन्द की आवे, भाई! आहाहा! इस द्रव्य का जिसे लक्ष्य हो, उसे पर्याय में आनन्द और ज्ञान की पर्याय की व्यक्तता / लहर आवे। आहाहा! परन्तु इसे द्रव्यस्वभाव का लक्ष्य नहीं, इसलिए द्रव्य की जो व्यक्तता है, ज्ञान-दर्शन उपयोग की (उसकी) उसे खबर नहीं है। इसलिए उसके जानने-देखने के उपयोग में भावक का भाव भासित हो, वह मैं हूँ — ऐसा मानकर वहाँ अटक गया है। आहाहा!

बहिन की पुस्तक की माँग बहुत आती है। अब जगत का भाग्य, आहाहा! अवसर पर आया, आहाहा! अवसर पर आया, बापू! भाई! परन्तु समझना महापुरुषार्थ है। यह कोई भगवान की भक्ति कर दे या देव-गुरु-शास्त्र की प्रशंसा.... आहाहा! ऐसा किया... आहाहा! इसलिए वह समझ में आ जाये — ऐसी वह चीज नहीं है। आहाहा! बड़े गजरथ निकाले-पाँच-पाँच लाख का खर्च करके रथयात्रा निकाले, पच्चीस-पच्चीस, पचास-पचास घोड़े... ऐसे इक्कीस-इक्कीस हाथी... हमारे हुआ था न? जब जयपुर में भगवान की रथयात्रा निकली, मैं वहाँ था और भगवान के रथ में बैठा था। इक्कीस हाथी, चालीस हजार लोग साथ में और चालीस हजार लोग साथ में तथा गाँव के तो लाखों लोग ऊपर से देखें... क्या है यह कोई? कोई राजा आया है? जयपुर, इक्कीस-इक्कीस हाथी, सामने शृंगार किये हुए और हजार-हजार लोगों के बाद एक-एक बैण्डबाजा, बड़ा

लश्कर, देखने निकले लोग-गाँव-दिगम्बर साधु, देखने निकले परन्तु यह क्या है प्रभु! यहाँ यह सब तो बाहर की चीज है। यह तो जड़ की क्रिया-बाहर की है और उसमें भाव होवे तो कदाचित् राग की मन्दता हो तो वह शुभ है और वह शुभ भी मलिनभाव है। आहाहा! ऐसा! वह भी भावक का भाव है, ज्ञायक का भाव नहीं। ज्ञायक का भाव नहीं, भावक का भाव है।

तब भावकभाव जो द्रव्यकर्मरूप मोह के भाव, उससे अवश्य भेदभाव होता है... क्योंकि भावक का भाव है, वह द्रव्यस्वभाव-ज्ञायक का भाव नहीं। आहाहा! क्या शैली! गजब शैली है! ऐसी टीका अभी भरतक्षेत्र में कहीं नहीं है। दिगम्बर धर्म के सिवाय ऐसी बात कहीं नहीं है। आहाहा! और उसका आत्मा जरा सा मध्यस्थ हो जाये तो उसे स्वीकार आवे कि बात तो यही है। आहाहा! **भावकभाव जो द्रव्यकर्मरूप मोह के भाव, उससे अवश्य भेदभाव होता है और आत्मा अवश्य अपने चैतन्य के अनुभवरूप स्थित होता है।** आहाहा! यह मलिनभाव, यह भावक का भाव, ज्ञायक का नहीं है - ऐसा भेद करने पर ज्ञायकभाव की परिणति शुद्ध हो जाती है। आहाहा! इस राग से भिन्न पड़ने पर द्रव्यस्वभाव की शक्ति पर दृष्टि पड़ने से पर्याय में ज्ञानी के ज्ञान का अनुभव होता है। इसका नाम धर्म है! अब ऐसी व्याख्या! समझ में आया? कहो, बाबूभाई! ऐसा सुना नहीं कहीं, वहाँ मांगरोल में! ऐसी बातें, बापू! आहाहा! मीठी मधुर वीणा बजती है। आहाहा!

यह ज्ञायकभाव... इसमें पुनरुक्ति लगे ऐसा नहीं है। आहाहा! यह ज्ञायकभाव भगवान, इसका व्यक्त भाव-प्रगट भाव तो ज्ञायक की परिणतिरूप भाव होता है, यह जानना-देखना, आनन्द आदि... और उस भावक का भाव विकार है, वह पर्याय में ऐसा दिखता है, वह भिन्न है - ऐसा जिसने भेदज्ञान किया, आहाहा! उसे ज्ञान में स्वभाव की अनुभूति रही, जो राग का-मलिनता का अनुभव था, उससे भेद किया तो अराग का अनुभव हुआ। शुद्ध चैतन्य की अनुभूति हुई। आहाहा!

अरे! लोग बेचारे विरोध करते हैं। बापू! माफ करना भाई! मार्ग तो यह है। तुम्हें दुःख लगे तो क्या करें, भाई! आहाहा! आहाहा! वस्तु तो यह है। तीन काल तीन लोक में यही वस्तु की स्थिति है। इसे दृष्टि में न लेकर जो मलिन परिणाम-जो भावक का भाव,

उसे दृष्टि में लेना, वह तो मिथ्यात्वभाव — संसारभाव है। आहाहा! परन्तु उससे भिन्न पड़कर... क्योंकि वह पर का भाव है, स्व का भाव नहीं, इसलिए भिन्न हो सकता है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! उपयोग में यह झलक दिखती है, वह तो शुद्ध उपयोग, उपयोग की चीज ऐसी है। (मलिन) भी दिखती है परन्तु वह है परभाव, उसे भिन्न पाड़कर प्रभु चैतन्य के स्वभाव सन्मुख होना, उसे ज्ञान की और शान्ति की अनुभूति हो, उसे परमात्मा यहाँ धर्म कहते हैं। ऐसी धर्म की शर्त है, बापू! आहाहा! यह भावार्थ हुआ।

कलश - ३०

अब, इस अर्थ का द्योतक कलशरूप काव्य कहते हैं —

(स्वागता)

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं चेतये स्वयमहं स्वमिहैकम्।

नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ॥३० ॥

श्लोकार्थः : [इह] इस लोक में [अहं] मैं [स्वयं] स्वतः ही [एकं स्वं] अपने एक आत्मस्वरूप का [चेतये] अनुभव करता हूँ, [सर्वतः स्व-रस-निर्भर-भावं] जो स्वरूप सर्वतः अपने निजरसरूप चैतन्य के परिणामन से पूर्ण भरे हुए भाववाला है; इसलिए यह [मोहः] मोह [मम] मेरा [कश्चन नास्ति नास्ति] कुछ भी नहीं लगता अर्थात् इसका और मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। [शुद्ध-चिद्घन-महः-निधिः अस्मि] मैं तो शुद्ध चैतन्य के समूहरूप तेजःपुंज का निधि हूँ। (भावभावक के भेद से ऐसा अनुभव करे।)

इसी प्रकार गाथा में जो 'मोह' पद है, उसे बदलकर, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन — इन सोलह पदों के भिन्न-भिन्न सोलह गाथासूत्र व्याख्यान करना, और इसी उपदेश से अन्य भी विचार लेना।

श्लोक - ३० पर प्रवचन

कलश ३०

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं चेतये स्वयमहं स्वमिहैकम् ।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ॥३० ॥

इसका हिन्दी बनाया है न, भाई! इस कलश में, बनारसीदासजी ने।

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं। अपने रससौं भर्यौ अनादि टेक हौं ॥
मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है। सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है ॥३३ ॥

यह मलिनता का परिणाम तो भ्रम का कुँआ है, आहाहा! जबकि मैं 'सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है।' 'सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है।'

भाषा कैसी की है? 'मोहकर्म मम नहीं नहीं भ्रमकूप है।' यह भ्रम भी मर्यादित कुँए जैसी है। आहा! आहा! परन्तु शुद्ध चेतना सिन्धु हमारा रूप है। आहाहा! यह है देखो! इस लोक में मैं.... श्लोक का (हरिगीत) बनारसीदास ने बनाया। इस जगत में अर्थात् जगत् सिद्ध किया। मैं स्वतः... स्वयं अपने से ही अर्थात् कोई उपदेश मिला, इसलिए पाता हूँ - ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान और गुरु का उपदेश मिला, इसलिए मैं स्वयं अनुभवरूप होता हूँ ऐसा नहीं। ऐसा है। देशनालब्धि मिली, इसलिए मैं होता हूँ? कि नहीं। आहाहा! स्वयं से ही, स्वयं है न? मैं तो मेरे स्वरूप से ही प्रकाशित हूँ। एकं स्वं।

श्रोता : यह अपने से तो ठीक है परन्तु 'ही' कहाँ से निकाला ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह 'ही' निकाला वह स्वयं से 'ही' पर से नहीं — ऐसा सिद्ध करने को निकाला (कहा)। 'स्वयं एकं स्वं' ऐसा आया न, देखो न! एकं स्वं अपने एक.... स्वरूप को, भिन्न रागादि को नहीं, भिन्न भाव को नहीं। आहाहा!

मेरा प्रभु! एक आत्मस्वरूप प्रभु है। आहाहा! चैतन्यबिम्ब परमात्मस्वरूप मैं आत्मस्वरूप, मैं एकरूप हूँ। भिन्न-भिन्न प्रकार जो है, उन रूप मैं नहीं हूँ। आहाहा! ऐसा कठिन लगता है। भाई! आहाहा! अरे! सुनने को मिले नहीं वे बेचारे कब विचारे और कहाँ जायें! अरे! उनकी भटकन कैसे मिटे? आहाहा! इस लोक में मैं... अर्थात् क्या? जगत

का अस्तित्व है, उसमें मेरा अस्तित्व स्वयं से **अपने एक आत्मस्वरूप का अनुभव करता हूँ...** आहाहा! मैं मेरे आनन्द का सागर नाथ, चैतन्यस्वभावी भगवान को पर के अवलम्बन और अपेक्षा बिना मेरे स्वभाव को मैं एकरूप अनुभव करता हूँ। मैं आनन्द हूँ, ज्ञान हूँ, शान्ति हूँ, स्वच्छ हूँ, प्रभु हूँ। आहाहा! यह जीव अधिकार है न? इसलिए जीव का स्वरूप पृथक् करके जीवपना यह है – ऐसा बतलाया है। आहा! इसलिए राग को अजीव कहा, जड़ कहा; चैतन्यस्वरूप नहीं, इसलिए जड़। आहाहा! क्योंकि राग है वह — चाहे तो भगवान की भक्ति हो या गुरु की भक्ति हो परन्तु राग है, वह अचेतन है। राग में स्वयं को जानने की ताकत नहीं (क्या कहा)? राग में स्वयं को जानने की ताकत नहीं; राग पर द्वारा-आत्मा द्वारा जानने में आता है, इसलिए वह राग अचेतन और जड़ है। आहाहा! कहो ईश्वरलालजी! ऐसी ईश्वरता है। आहाहा!

अब लोग बेचारे क्या करें? विरोध करें। भगवान! तत्त्व का विरोध करते हैं, प्रभु! तेरा तत्त्व ही ऐसा है। भाई! तुझे एकान्त लगे कि यह तो व्रत, नियम, तप, और भक्ति के भाव को राग कहकर उड़ा देते हैं। आहाहा! भाई! तुझे पता नहीं। तेरा चैतन्य भगवान अकेले ज्ञान-दर्शन आनन्द के स्वभाव से भरपूर प्रभु है, उसके उपयोग में राग कहाँ से आवे? (नहीं आवे)।

त्रिकाली उपयोगस्वरूप... उपयोग में उपयोग है। संवर (अधिकार) में आया है न, भाई! आहाहा! अर्थात्? निर्मल उपयोग परिणति में आत्मा है; राग में आत्मा नहीं। आहाहा! गजब शैली! दिगम्बर सन्तों की बातें परमात्मा को जाहिर / प्रसिद्ध करके पुकार करती है। ढिंढोरा पीटकर पुकारती है। दुनिया मानो या न मानो, समाज में संगठन रहो या न रहो! ये नागा बादशाह से आघा... आहाहा! आहा! दिगम्बर सन्त पुकार करते हैं ऐसे। आहाहा!

यह स्वयं से ही 'एक' और 'स्व' एक, एक रूप में भेद भी नहीं; राग तो नहीं परन्तु पर्याय का भेद भी नहीं ऐसा एक स्वं, एक स्वं, एक स्वं, एक हूँ, एक स्वयं, एक स्वयं, आहाहा! है न? एक अपना... एक और स्वं का अर्थ आत्मस्वरूप, एकरूप स्वं। एक अर्थात् अपना एक और स्वं अर्थात् अपना स्वरूप 'आत्मस्वरूप'। आहाहा! भाग्यशाली को कान में पड़े, ऐसी बात है बापू! रामजीभाई कहते हैं न... आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

श्रोता : अब भाग्य लेकर आये हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो इसे करना है न ?

श्रोता : यह तो करना तो स्वयं को ही होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा था यहाँ, स्वयं एकं एवं करता है, बताया इसलिए करता है - ऐसा नहीं है। आहाहा!

श्रोता : गुरु तो बताकर निर्लस रहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा क्या करे ? वस्तु तो यह है। गति तो इसे करनी है न ? चलना तो इसे है न ? दूसरा मार्ग बतावे कि देखो, यह मार्ग है, यहाँ से जा। इन दो बाड़ के बीच से, परन्तु चलना तो इसे है न ? कोई साथ आयेगा ? और साथ आवे तो भी चलना तो स्वयं को है न ? आहाहा!

मैं, 'कहे विचच्छन पुरुष', विचच्छन अर्थात् ज्ञानी, उसे विचच्छन कहते हैं। जगत के चतुर, वे सब पागल जैसे हैं।

श्रोता : पागल ही हैं, पागल जैसे ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जगत के सब वकील और... यह बड़े वकील थे, तीस वर्ष पहले दो सौ रुपये लेते थे, बड़े पागल — एल.एल.बी. वाले बड़े पूंछडे लगाये हों वकालात के... हजार-हजार रुपये दिन के लेते हों... बड़े पागल हैं। आहाहा!

यहाँ तो विचच्छन उसे कहते हैं कि जिसने राग से भिन्न पड़कर, मेरा चैतन्यस्वरूप शुद्ध है — ऐसा अनुभव हुआ, उसे विचच्छन और चतुर कहते हैं, बाकी सब पागल हैं। आहाहा! जिसके फल में चार गति मिले-भटकना (मिले), वह क्या चीज है, बापू ? आहाहा! अरे...रे! भवभ्रमण करता कहाँ भव जाये... अरे...रे! एक सबेरे उस दिशा को जाते हैं और वहाँ रखते हैं, क्या कहलाता है ? प्रकाश, हों! बैटरी रखते हैं, वहाँ एकदम छोटे जीव ऐसे आते हैं छोटे जीव, जंगल में। बेचारे चौइन्द्रिय लगते हैं। ऐसा छोटा शरीर, ऐसे हों ऐसे हों, उन्हें कुछ पता नहीं। कहाँ क्या करते हैं ? कौन हैं यह ? अरे! कब मनुष्य हो, इन्हें ऐसा सुनने कब मिले और सुनने के बाद भी भेद कब करे ? आहाहा! बहुत दुर्लभ वस्तु, भाई! आहाहा!

इस लोक में मैं सम्यग्दृष्टि जीव, धर्मी जीव ऐसा अपने को मानता है कि मैं स्वयं से ही एक 'स्व' एक 'स्व' आत्मस्वरूप का अनुभव करता हूँ... पर के कारण नहीं, उपदेश के कारण नहीं, राग के कारण नहीं — ऐसा कहते हैं। मेरा नाथ भगवान् चैतन्यस्वरूपी, उसे मैं एकरूप हूँ, उसे मैं अनुभव करता हूँ। आहाहा! इसका नाम विचच्छन और सम्यग्दृष्टि! आहाहा!

'सर्वतः स्व-रस-निर्भर-भावं' जो स्वरूप... मेरा। सर्वतः... चारों ओर से अपने निजरसरूप चैतन्य के परिणमन से पूर्ण भरे हुए.... आहाहा! मेरा प्रभु तो शुद्ध चैतन्यसिन्धु - सागर, बड़ा सागर, आहाहा! ज्ञानादि गुणों का तो गोदाम,... मेरा नाथ तो ज्ञानादि गुणों का गोदाम, शक्तियों का संग्रहालय और स्वभाव का सागर (है)। आहाहा! ऐसा जो स्वरूप सर्वतः अपने निजरसरूप चैतन्य के परिणमन से.... अर्थात् स्वभाव से यहाँ बात है। स्वभाव पूर्ण भरपूर भाववाला है। परिणमन शब्द अर्थात् पारिणामिक स्वभाव से भरपूर परिपूर्ण है। परिणमन अर्थात् पर्याय नहीं लेना। समझ में आया? आहाहा!

अरे! समय चला जा रहा है। बिजली की चमक सी आयु पूर्ण हो जायेगी, भाई! यह चमक चली जायेगी। आहाहा! उसमें यह मोती पिरो ले। आहाहा! बिजली की चमक में मोती पिरो ले तो पिरो ले। आहाहा! मेरा नाथ चैतन्यस्वरूप एक स्वरूप से विराजमान है। निजरसरूप चैतन्य के परिणमन से पूर्ण भरे हुए भाववाला है;.... मैं ज्ञान-दर्शन आनन्द के भाव से पूर्ण भरपूर हूँ। विकार तो नहीं परन्तु अल्पज्ञपना भी नहीं। आहाहा!

इसलिए यह मोह मेरा.... कश्चन अस्ति-नास्ति कुछ भी नहीं लगता.... आहाहा! यह शुभाशुभ रागादिभाव... यह मोहभाव क्योंकि यह परतरफ की सावधानीवाला भाव (है), मेरे स्वरूप के सावधानी के भाव से यह भिन्न भाव है। इसका और मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! चैतन्य के स्वभाव से भरपूर मैं, उसे यह राग जो पर तरफ का मोहभाव, वह मेरा कुछ नहीं। नास्ति, नास्ति कश्चन अर्थात् कुछ भी नहीं लगता। इसका और मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। नास्ति, नास्ति दो बार है न? कुछ भी नहीं कोई भी नहीं... मेरे और इसके... आहाहा! आहाहा!

तब अस्ति क्या है अब? मेरा अस्तित्व मेरा प्रभु, उसका अस्तित्व क्या है? इसकी

(मोह की) तो मुझमें नास्ति है; अस्तित्वरूप मेरी अस्ति चीज प्रभु है, वह क्या है? 'शुद्ध-चिद्घन-महः-निधिः अस्मि' आहाहा! मैं तो शुद्ध चैतन्य के समूहरूप.... है? 'शुद्ध-चिद्घन' समूह... 'महः-निधिः' तेजः पुंज का निधि हूँ। महः अर्थात् तेज। आहाहा! मैं तो शुद्ध चिद्घन चैतन्य का समूह, चैतन्य का समूह भगवान तो मैं हूँ। आहाहा! एक बात। तेजपुंज की निधि। महः-निधि, महः अर्थात् तेज; निधि अर्थात् समुद्र; अस्मि अर्थात् मैं हूँ। आहाहा! ऐसी बात है। भावकभाव के भेद द्वारा ऐसा अनुभवन करे, तब उसे सम्यग्दृष्टि और धर्मी कहने में आता है, बापू! आहाहा! समझ में आया? विशेष कहा जायेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)